श्रृंखला – 2

शोधपरक् प्रगति विवरण

....

(ध्यान, त्राटक और पारेन्द्रिय विद्या)

'मेटाफिजिकल' क्रम में 'भौतिकता और आध्यात्मिकता' के मध्य समन्वय स्थापित करने के लिए एक अदद 'साधक, साध्य और साधना' की आवश्यकता पड़ती है। व्यक्ति (साधक/साधिका) जब भी किसी 'धार्मिक/आध्यात्मिक' साध्य को 'साधना' के माध्यम से पूर्ण करना चाहता है तो उसे सबसे पहले उस माध्यम को ढूढने – खोजने की आवश्यकता पड़ती है जो उसके इस जटिल कार्य में सहायक सिद्ध हो सके। क्योंकि दोनों

(व्यक्ति और देवतत्व का व्यापक समूह/ ईष्ट आदि) के मध्य का अति व्यापक और असीमित अन्तराल, उसे अपने 'अन्तःबाह्य' से जोड़ने प्रयास करना होगा। इस अति व्यापक और असीमित अन्तराल को अपने 'अन्तःबाह्य' से जोड़ने के लिए उसे (साधक/साधिका) सबसे पहले 'ध्यान, त्राटक और पारेन्द्रिय विद्या (टेलीपैथी)' आदि में पूर्ण रूप से अभ्यस्थ होना होगा। इन त्रयी बिन्दुओं 'ध्यान, त्राटक और पारेन्द्रिय विद्या' से आत्मसात करने और उसमें पूर्ण रूप से अभ्यस्थ होने के लिए उसे निम्न आवश्यक प्रक्रियाओं से अवगत होना आवश्यक है–

(1).ध्यान – ध्यान या मेडिटेशन का लक्ष्य एकाग्रता और मन की शान्ति को प्राप्त करना है और इस प्रकार अन्ततः इसका उद्देश्य आत्म चेतना और आन्तरिक शान्ति के एक ऊँचे स्तर पर चढ़ना है। इसे निम्नक्रम में व्यक्त किया जा सकता है –

'ध्यान' एक ऐसा आत्मदर्शन है जिसे व्यक्ति (साधक/साधिका) कहीं भी किसी समय कर सकता है। इस क्रम में वह अपने आपको शान्ति तथा सौम्यता की ओर पहुंचा सकता है। ध्यान के क्रम में, इस बात का कोई अन्तर नहीं पड़ता है कि उसके आस पास क्या हो रहा है।

'ध्यानयोग' से व्यक्ति (साधक/साधिका) मन को एकाग्र कर सकता है। व्यक्ति (साधक/साधिका), जब विषम समस्याओं में घिर जाता है तो यह उसके लिए आवश्यक हो जाता है कि वह किस प्रकार अपना मस्तिष्क शान्त करे और उन तथाकथित समस्याओं के समाधान के विषय में नये सिरे से सोचने का प्रयास करे। यदि व्यक्ति (साधक/साधिका) ध्यान के क्रम में मस्तिष्क को शान्त करने और शान्त मन से समस्याओं का समाधान ढूढ़ने में सक्षम हो जाता है तो उसके लिए कठिन कार्य भी सामान्य हो सकता है।

यदि व्यक्ति (साधक/साधिका) मन को एकाग्र नियन्त्रित करने के उपरान्त भी समस्याओं का हल नहीं ढूंढ़ पाता है तो वह उस क्रम में विषम परिस्थितियों से भी मुक्त होने में अपने को असमर्थ पायेगा।

मनोवैज्ञानिक और मन को बहुत कुछ मानने वाले योगी 'मस्तिष्क' के अन्तर्गत ही एक दूसरी समानान्तर वस्तु का अन्वेषण करते हैं, जिसके आश्रय से मनुष्य स्वयं अपने मन और हृदय से ऊपर उठ सकता है । योग विज्ञान इस परतत्व को मनुष्य के शरीर के अन्दर ही स्थित मानता है जो 'राजयोग'का मुख्य विषय है।

'राजयोग' मानव के मन के गूढ़ तत्वों के अध्ययन के लिए हर तरह से उपयोगी है। इसी के सहारे साधक (साधिका) मन के रहस्यों को विश्लेषित करते हुए आत्म साक्षात्कार तक पहुंच जाता है। यह सब मनोविज्ञान के क्षेत्र में, व्यक्ति को गहरी अन्तर्दृष्टि प्रदान करता है। 'राजयोग' का अभ्यास करने वाला व्यक्ति (साधक/साधिका) अपने मन के रहस्यों को जानने में पूर्ण समर्थ हो जाता है । वह साधक (साधिका) मन तथा इन्द्रियों के नियन्त्रण करने की कला या युक्तियां जान जाता है। यही नहीं, वह निराशा के विचारों को आशायुक्त या नास्तिक भावना को आस्तिकता में परिणत करने में समर्थ हो जाता है। नियन्त्रित मन और वासनाओं के दमनपूर्वक क्रम से वह किसी भी दुर्लभ परतत्व को प्राप्त करने में समर्थ हो सकता है।

सामान्यक्रम में व्यक्ति (साधक/साधिका) निराशा, हताशा या अनभिज्ञता के क्रम में निम्न बातें सोच सकता है और उसी क्रम में वह अपने 'अन्तः बाह्य' को दबाने का प्रयास करता है –

1.मेरा योग /ध्यान आदि में कोई आकर्षण नहीं है।

2. मेरे पास सभी आनन्द और उपभोग की वस्तुएं है। ऐसे में मेरे लिए 'योग/ध्यान' की क्या आवश्यकता है।

3. हमारे पास बहुत सी बुरी आदतें या दुष्प्रवृत्तियां भी है, जिनका परित्याग सम्भव नहीं है।

4. मेरे मस्तिष्क में विविध सुख– भोग और शत्रु – नाश सम्बन्धी विषय वासनाएं भी भरी पड़ी हैं।

5. जब कुछ भी सम्भव नहीं है तो मनोनियन्त्रण तथा इन्द्रिय –निग्रह आदि की आवश्यकता भी क्या है?

उपरोक्त पांचों बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुए 'राजयोग' की सम्भव प्रक्रियाओं से निम्न क्रम में अभ्यास किया जा सकता है –

सच तो यह है कि विश्व का अधिकांश व्यक्ति – 'धन, यश और व्यापार आदि में लाभ' से जुड़ा सब कुछ चाहता है। लेकिन आध्यात्मिक प्रकाश की प्राप्ति में मन को एक

सीमा तक नियन्त्रित करना अति आवश्यक होता है। 'धन, यश तथा विविध सफलता प्राप्ति' हेतु मन को नियंत्रित कर उनके तथाकथित उपायों को प्राप्त करने में लगाना पड़ता है। इसके साथ – साथ इस बात का भी प्रतिकार नहीं किया जा सकता है कि जब व्यक्ति (साधक/साधिका) को अत्यधिक आनन्द की प्राप्ति होती है तो उसके अन्तः में कुछ अच्छे गुण आते है और उसी क्रम में बुरे गुण क्रमशः विनष्ट होने लगते हैं।

योग का क्रमिक अभ्यास करने पर व्यक्ति (साधक/साधिका) उसके अन्तर्गत कौन सा उपादेय गुण और हेय दोष है उन्हें जानने और उस क्रम में त्वरित निर्णय लेने में वह समर्थ हो जाता है। इस अभ्यास के क्रम में उसे इस बात की आवश्यकता भी नहीं पड़ती कि इसमें 'स्त्री, पुरुष और धनादि सांसारिक परिस्थितियों का परित्याग ही करना पड़े। 'मस्तिष्क' के सभी द्वार और उससे सम्बन्धित विविध छिद्रों को सर्वथा बन्द कर देने की भी आवश्यकता नहीं पड़ती है।

इस उपरोक्त क्रम में 'विश्व में जितनी भी ध्वनियां या उनका अपना स्वरूप है' – उसे सर्वथा नष्ट कर या उसे अपने से दूर कर देने की भी उसे (साधक/साधिका) रंचमात्र भी आवश्कता नहीं होती है। वह सब अपनी जगह पड़ी रहें इससे कोई विशेष कुप्रभाव नहीं पड़ता है। इन तथाकथित परिस्थितियों में भी व्यक्ति (साधक/साधिका) अपनी स्वाभाविक व्यस्तता के अन्तर्गत भी मन को नियन्त्रित या किसी एक स्थान पर केन्द्रित कर सकता है। वह अपने क्रमिक अभ्यास के अन्तर्गत अत्यन्त दुरूह परिस्थितियों में भी आन्तरिक शान्ति प्राप्त कर सकता है या उसी क्रम में मन को एकाग्र कर सकता है।

यह कहना अतिश्योक्ति न होगा कि – योग ही एक ऐसा माध्यम है जिसके अन्तर्गत, ध्यान प्रक्रिया से जुड़ते हुए या क्रमिक अभ्यास के क्रम में व्यक्ति (साधक/साधिका) मन को एकाग्र करने की कला सीख सकता है या उसी क्रम में लोगों को सिखा सकता है।

अन्ततः 'धारणा, ध्यान और समाधि' – सम्बन्धी त्रिकोणीय क्रम व्यक्ति (साधक/साधिका) को संयमयुक्त बना देता है। इन सबका संक्षिप्त विवरण निम्न क्रम में प्रस्तुत किया जा सकता है –

'यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार' आदि योग के बहिरंग साधन हैं। इनका विधिवत् अभ्यास होने के उपरान्त ही व्यक्ति (साधक/साधिका) को अन्तरंग साधना से जुड़ने का प्रयास करना चाहिए। इसमें पहला साधन – 'धारणा' है, दूसरा साधन – 'ध्यान' है और तीसरा साधन – 'समाधि' है। इन तीनों 'धारणा, ध्यान और समाधि' की संक्षिप्त अभिव्यक्ति निम्नक्रम में प्रस्तुत की जा सकती है –

1. धारणा – व्यक्ति (साधक/साधिका) के शरीर के बाह्य और अन्तः में किसी एक स्थान में चित्त को ठहराना ही 'धारणा' है।

2. ध्यान – जिस ध्येय वस्तु में चित्त को लगाया जाय, उसी में चित्त की वृत्ति का एकतार चलना ही 'ध्यान' है।

3. समाधि – योग का अन्तिम साधन 'समाधि' है। इसमें 'मन' की पूर्ण एकाग्रता होती है। 'ध्याता, ध्यान और ध्येय' – तीनों इसमें एक हो जाते हैं।

इन तीनों साधनों का किसी एक पदार्थ में होना 'संयम' कहलाता है।

'ध्यान' की पूर्णता के अन्तर्गत, व्यक्ति (साधक/साधिका) के अन्तः के सभी प्रमुख 'षट्/सप्त चक्र' (मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा और सहस्रार आदि) किसी न किसी रूप में गतिशील होते रहते हैं। इसलिए 'ध्यान' के क्रम में व्यक्ति (साधक/साधिका) को 'अन्तः बाह्य' क्रम में चक्रों को स्पर्श कर लेना चाहिए।

(2). त्राटक – एकाग्रचित्त होकर व्यक्ति (साधक/साधिका) निश्चल दृष्टि से सूक्ष्म लक्ष्य अर्थात् अतिलघु पदार्थ को तब तक देखे जब तक अश्रुपात न होने लगे। इस क्रिया को 'त्राटक' कर्म कहा जा सकता है।

व्यक्ति को चाहिए कि वह सफेद दिवाल पर सरसों के बराबर काला चिन्ह बना ले और उसी पर दृष्टि ठहराते – ठहराते चित्त समाहित और दृष्टि शक्ति सपन्न होने दे। मेस्मेरिज्म में जो शक्ति आती है वही शक्ति 'त्राटक' में भी प्राप्य है।

('विशेष – किसी भी सामान्य आसन पर बैठकर पीत धातु, सामान्य प्रकाश या प्राकृतिक वनस्पतियों को एकटक देखने की प्रक्रिया को त्राटक कहते हैं। उच्चस्थितियों में योग साधक (साधिका) को चाहिए कि वह सिद्धासन पर बैठकर घृत दीप या रक्त पुष्प पर त्राटक करे। सामान्यतः स्फटिक के यन्त्र पर त्राटक करने से किसी प्रकार की हांनि नहीं होती है।)

'त्राटक' क्रिया करते समय व्यक्ति (साधक/साधिका) को निम्न सावधानी बरतनी चाहिए–

1.साधक को चाहिए कि वह त्राटक की क्रिया को कभी भी तीव्र प्रकाश के साथ न करे।

2. 'त्राटक' के नियमित अभ्यास से नेत्र और मस्तिष्क में उष्णता बढ़ती है।

3. व्यक्ति (साधक/साधिका) को चाहिए कि वह इस क्रिया को देर तक न करे।

उपरोक्त क्रम में 'त्राटक' का अभ्यास वह निम्न तीन क्रम में कर सकता है–

(अ).आन्तर त्राटक – नेत्र बंद करके भ्रूमध्य, हृदय, नाभि आदि आन्तरिक स्थानों में चक्षुवृत्ति की भावना करके देखते रहना आन्तर त्राटक है।

(ब). मध्य त्राटक – किसी धातु, पत्थर की बनी हुई वस्तु, भोजपत्र पर रक्तिम चन्दन से लिखे ऊँ या स्वास्तिक, रक्तिम पुष्प या प्राकृतिक दृश्यों पर टकटकी लगाकर देखते रहना मध्य त्राटक है।

(स). बाह्य त्राटक – चन्द्र, प्रकाशित नक्षत्र, प्रातःकालीन उदित सूर्य अथवा दूरवर्ती लक्ष्य पर दृष्टि स्थिर करने की किया को बाह्य त्राटक कहते हैं।

पश्चात्य संस्कृति से सम्बद्ध कतिपय व्यक्ति (साधक/साधिका) 'मद्यपान, मांसाहार तथा अम्ल पदार्थ' आदि का सेवन करते हुए भी 'मैस्मेरिज्म' विद्या की सिद्धि के लिए 'त्राटक' किया करते हैं। लेकिन ऐसे लोगों का अभ्यास सामान्य क्रम में पूर्ण नहीं हो पाता है।

उपरोक्त क्रम में 'त्राटक' करने वाले व्यक्तियों की कभी – कभी नेत्रों की ज्योति लुप्त हो जाती है। उसी क्रम में वह कभी – कभी विक्षिप्तावस्था में आ जाता है। इसलिए जो लोग नियमित रूप से पथ्य का पालन करते हैं वही इस विद्या (त्राटक) में सफल हो पाते हैं।

व्यक्ति (साधक/साधिका) को चाहिए कि वह यम नियम पूर्वक आसनों के अभ्यास से नाड़ी समूह मृदु हो जाने पर ही 'त्राटक' किया आरम्भ करे। क्योंकि कठोर नाड़ियों को आघात पहुंचते देर नहीं लगती है।

'त्राटक' किया के जिज्ञाशु व्यक्तियो (साधक/साधिका) को चाहिए कि वह आसनों के अभ्यास के परिपाककाल में नेत्र सम्बन्धी व्यायाम का भी अभ्यास अवश्य कर लें। उसे चाहिए कि वह पातःकाल में शान्तिपूर्वक सामान्यक्रम में नेत्र दृष्टि को शनैः शनैः बायें, दायें और ऊपर/नीचे चलाने और हिलाने डुलाने का अभ्यास करे। इस पूरे क्रम को नेत्रों का व्यायाम कहा जा सकता है। इस नेत्र सम्बन्धी व्यायाम से नेत्रों की नसें दृढ़ होने लगती है। इसके अनन्तर 'त्राटक' करने से नेत्रों को हांनि पहुंचने की सम्भावना बहुत कम हो जाती है।

सामान्यतः 'त्राटक' के क्रमिक अभ्यास से दोनों नेत्र और मस्तिष्क में उष्णता बढ़ जाती है। इसलिए उसे नित्य क्रम में त्रिफलायुक्त जल या गुलाब जल से नेत्रों को धोना चाहिए। उसे उन्हीं खाद्य पदार्थों का दैनिक भोजन में सेवन करना चाहिए जो पित्तवर्द्धक और मलावरोध न उत्पन्न करें।

'त्राटक' किया के अभ्यास में व्यक्तियो (साधक/साधिका) को निम्न सावधानी बरतनी चाहिए –

1.त्राटक के अभ्यास में यदि नेत्रों से आंसू आने लगे तो उसे उस दिन अभ्यास की पुनरावृत्ति नहीं करनी चाहिए।

2. सामान्यतः 'त्राटक' का अभ्यास व्यक्ति (साधक/साधिका) को प्रातः काल की वेला में करना चाहिए।

3. वास्तव में व्यक्ति (साधक / साधिका) को 'त्राटक' का अभ्यास ब्रह्मवेला (रात्रि – 2 से 5 बजे तक) में करना चाहिए। क्योंकि शान्ति के समय में चित्त की एकाग्रता बहुत शीघ्र होने लगती है।

'त्राटक' क्रिया के नियमित अभ्यास से व्यक्ति (साधक / साधिका) को निम्न लाभ और उपलब्धि हो सकती है –

1.'त्राटक' के लम्बे अभ्यास (एक वर्ष के उपरान्त) व्यक्ति (साधक / साधिका) का संकल्प शक्ति दृढ़ होने लगती है। वह दूसरे व्यक्तियों के हृदय के भाव यानी उसके अन्तः सोच से शनैः शनैः अवगत होने लगता है। उसी क्रम में उसे सुदूर स्थित पदार्थ या घटनाक्रम का तात्कालिक बोध होने लगता है।

2. .'त्राटक' के लम्बे अभ्यास (एक वर्ष के उपरान्त) व्यक्ति (साधक / साधिका) को दृष्टि लाभ के साथ – साथ मस्तिष्क सम्बन्धी विकारों से मुक्ति मिलने लगती है।

3. .'त्राटक' के लम्बे अभ्यास (एक वर्ष के उपरान्त) व्यक्ति (साधक / साधिका) को मानसिक विविध तनावों से स्थाई क्रम में मुक्ति मिलने की सम्भावना प्रबल होने लगती है।

(3). टेलीपैथी (पारेन्द्रिय विद्या)– यह दो मस्तिष्कों के बीच संवाद की एक कला या प्रक्रिया मात्र है। इसे निम्नक्रम में पारिभाषित करने का सम्भावित प्रयास किया जा सकता है–

'वह अन्तः मानसिक शक्ति जिसके द्वारा पांच इन्द्रियों (देखना, सुनना, सूंघना, छूना और चखना आदि) के प्रयोग के बिना दो मस्तिष्कों के बीच संवाद का क्रम स्थापित किया जा सकता है।'

'टेलीपैथी' एक मस्तिष्क आधारित मनोयोग है जो प्रत्येक जीवित व्यक्ति / प्राणी में सामान्यतः सुप्तावस्था में निहित होता है लेकिन यह मानव के अवचेतन मस्तिष्क में होता है। यह शक्ति हर प्राणी में जाग्रत नहीं होती है। इस विद्या के द्वारा व्यक्ति दूसरों तक के विचार, भावनाएं, संवेदनाओं के साथ – साथ मानसिक चित्रण भी सम्प्रेषित कर सकता है। इसके द्वारा कोई भी व्यक्ति दूसरे व्यक्ति, जानवर, पंक्षी और पेड़ पौधों से सम्पर्क स्थापित करके उन सबके अन्तः बाह्य का भाव जान समझ सकता है।

टेलीपैथी (पारेन्द्रिय विद्या) को लेकर इससे सम्बन्धित विवादों का होना इसलिए भी आवश्यक है कि – इसका प्रचलन क्लिशटता और यथोचित वैज्ञानिक प्रामाणिकता के अभाव का सार्वभौमिक क्रम में व्याप्त होना। लेकिन इन विवादों के अन्तर्गत भी निम्न वैज्ञानिक सोच को प्रस्तुत किया जा सकता है –

1.इस शब्द (टेलीपैथी) का प्रयोग सन् 1882 में फैड्रिक डब्लू0 एच0 मायर्स ने एक जनरल 'सोसाइटी ऑफ साइकिक रिसर्च' में किया था। उन्होंने उस जनरल में लिखा था कि दूर से प्राप्त संवेदन और प्रभावों को वह 'टेलेस्थेशिया' और 'टेलीपैथी' शब्द दे रहे हैं।

2. विल्हेम वान ने 'टेलीपैथी' को विस्तारित करते हुए लिखा है कि – 'हर व्यक्ति में वह शक्ति होती है जिसे वह जागृत करके भविष्य को वर्तमान के दर्पण में देख सकता है।'

3. केम्ब्रिज विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक एंड्रियन ड्रास ने 'टेलीपैथी' के विषय में कहा है कि – 'भविष्य में घटने वाली हलचलें वर्तमान में मानव मस्तिष्क में तरंगें उत्पन्न करती हैं जिन्हें ' साइट्रानिक वेब फ्रंट' कहते हैं। इन तरंगों के अहसास को मानव मस्तिष्क के न्यूरोन ग्रहण कर लेते हैं। हमारे मस्तिष्क के अल्फा तरंगों की आवृत्ति इन साइट्रानिक तरंगों की आवृत्ति जैसी होने के कारण हमारा मस्तिष्क तरंगों को पकड़ लेता है और इस प्रकार व्यक्ति स्वयं और दूसरे व्यक्ति के मस्तिष्क की घटनाओं के बारे में पता लगा लेता है।

4. हरहम विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक 'गेरहार्ड बोशर मेन' का कथन है कि – 'मनुष्य को भविष्य का आभास इसलिए होता है क्योंकि विभिन्न घटनाक्रम समय सीमा से परे और चिन्तन क्षेत्र में विद्यमान रहते हैं। ब्रह्माण्ड का हर घटक इन घटनाक्रमों से जुड़ा होता है।

5. प्रसिद्ध दार्शनिक 'डी0 स्कॉट रोगो' ने अपनी पुस्तक 'एक्सप्लोरिंग साइकिक फिनामिना बियांड माइंड एण्ड मैटर' में लिखा है – 'हमारे अन्तःकरण में निहित भावनाओं का स्राव बहुत तेजी से मनोवेग के रूप में होता है। यही मनोवेग तरंगों के रूप में दूसरे के मस्तिष्क तक पहुंचते हैं।

6. एलबर्ट आइंस्टीन ने अपने सापेक्षवाद के सिद्धान्त में लिखा है कि – 'यदि प्रकाश की गति से भी तीव्र गति वाला कोई तत्व हो तो वहां समय रूक जायेगा।

प्रकृति में बहुत सारे 'तत्व/अवयव' आदि विविध श्रृंखलाओं के अन्तर्गत विद्यमान हैं। यह सब अभी भी अपरा वैज्ञानिकता की विविध खोज / शोध से परे हैं। 'परा' वैज्ञानिकता के अनन्तगामी व्यापकता से 'अपरा' वैज्ञानिकता अभी तक कोई ऐसा सामंजस्य नहीं बना पाया है जिससे 'भौतिकता और आध्यात्मिकता' के मध्य कोई सेतुबन्ध बन सके जो मानव और मानवता के सापेक्ष हो।

इसलिए आध्यात्मिक खोज/शोध को भौतिकता के विज्ञान से जोड़ने या उससे अनायास प्रामाणिकता प्राप्त करने का प्रयास निरर्थक है। क्योंकि वह उसके लिए तब तक अयोग्य सिद्ध होता रहेगा जब तक वह सही मायने में 'अध्यात्म' से सम्बद्ध खोज/शोध का प्रयास नहीं करेगा। लेकिन मानव सापेक्ष कार्य करने के लिए 'परा विज्ञान' को 'अपरा विज्ञान से यथासम्भव जोड़ने का भी प्रयास करना चाहिए – चाहे वह सब आंशिक ही क्यों न हो।

उपरोक्त वैचारिक और दार्शनिक विरोधाभास के विविध क्रम को ध्यान में रखते हुए 'पारेन्द्रिय विद्या' (टेलीपैथी) के प्रायोगिक क्रम को निम्न क्रम में जाना समझा जा सकता है –

हमारे मस्तिष्क में 'हिपोकैम्पस' कम्प्यूटर की तरह यादों को जमा करने के लिए 'हार्डडिस्क' का काम करता है। 'एमिग्डाला' इसमें से अच्छी और बुरी यादों को छांटता रहता

है। डर से जुड़ी भावनाएं भी यहीं उत्पन्न होती हैं और इसे समझने और डीकोड करने का काम भी यही करता है। 'एमिग्डाला' और 'हिपोकैम्पस' के आपसी सम्पर्क से ही अच्छे और बुरे कामों का एहसास होता है।

'टेलीपैथी' की प्रक्रिया मस्तिष्क आधारित संवेगों पर नियंत्रण की प्रक्रिया है। निम्न प्रक्रिया के अन्तर्गत, एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के साथ 'टेलीपैथी' का अभ्यास कर सकता है –

1. यह प्रकिया दो मस्तिष्कों के बीच बिना बातचीत के सम्पर्क संवाद है। पहला व्यक्ति संवाद भेजने वाला और दूसरा व्यक्ति संवाद स्वीकार करने वाला बनकर अभ्यास कर सकता है।

2. इस अभ्यास में आत्मीय विश्वास आवश्यक है। इस क्रम में दोनों व्यक्तियों को 'टेलीपैथी' पर विश्वास और पूर्ण आस्था रखनी होगी। संदेश भेजने वाले और संदेश स्वीकार करने वाले; दोनों व्यक्तियों के मध्य इस प्रक्रिया के प्रति उत्सुकता होनी चाहिए।

3. 'टेलीपैथी' का अभ्यास करने के लिए, सबसे पहले दोनों व्यक्तियों को स्वस्थ्य और तनावमुक्त होना चाहिए। क्योंकि व्यक्ति का मन विविध विचारों का केन्द्र होता है। व्यक्ति को चाहिए कि वह मन में विचारों को स्वतः आने दे और साक्षी भाव से तटस्थ रहने का प्रयास करे। अपने मन और शरीर में कोई अवरोध उत्पन्न न होने दे। उसी क्रम में मन और वातावरण को शान्त और स्थिर रखने का प्रयास करे।

4. विचारों का सम्प्रेषण करने से पहले दोनो व्यक्तियों को चाहिए कि वह एक दूसरे के 'अन्तः बाह्य' स्वरूप को अपने –अपने सामने साकार करने की परिकल्पना करे। उसी क्रम में एक दूसरे के स्वरूप के बिम्बों को अपने अपने मस्तिष्क में स्थापित करे और ऐसा अनुभव करे कि 'टेलीपैथी' से सम्बद्ध दोनों व्यक्ति आमने सामने बैठे हैं।

5.विचारों का सम्प्रेषण करने वाला पहला व्यक्ति अपने मस्तिष्क में सम्प्रेषणयुक्त विचारों को एकदम से सोच ले। उसी क्रम में वह कल्पना करे कि उसका वह विचार दूसरे व्यक्ति के मस्तिष्क में सम्प्रेषित हो रहा है। सम्प्रेषण के समय उसे पूर्ण विश्वास होना चाहिए कि उसका सम्प्रेषण बहुत सशक्त है और वह तथाकथित विचार दूसरे व्यक्ति तक पहुंच रहा है। सम्प्रेषण की प्रक्रिया के अन्तर्गत दोनों के मस्तिष्क पूर्णतः तनावमुक्त होना चाहिए।

6. सम्प्रेषण करने वाले व्यक्ति को इस प्रक्रिया के अन्तर्गत जब यह अनुभव होने लगे कि उसका सम्प्रेषण कार्य पूरा हो चुका है तो उसे स्वतः इस प्रक्रिया को बंद कर देना चाहिए। यदि 15–20 मिनट तक उसे ऐसा अनुभव नहीं होता है तो भी उसे यह प्रक्रिया बंद कर देना चाहिए। इस क्रम को उसे दूसरे दिन पुनः आरम्भ करनी चाहिए।

7. सम्प्रेषण द्वारा प्राप्त विचारों को मस्तिष्क में ग्रहण करते ही उसे चाहिए कि वह उसे कागज पर क्रमशः लिपिबद्ध कर ले। सम्प्रेषण द्वारा विचारों को भेजने वाले व्यक्ति और उसे ग्रहण करने वाले व्यक्ति के विचारों में समानता दिखे तो यह समझना चाहिए कि 'टेलीपैथी' का

यह प्रयोग दोनों के मध्य सफल रहा है। इसके बार –बार अभ्यास से दोनों व्यक्तियों के मध्य 'टेलीपैथी' का क्रम सशक्त हो सकता है।

उपरोक्त सातों बिन्दुओं के अन्तर्गत, यह विविध क्रम में स्पष्ट हो जाता है कि 'टेलीपैथी' दो व्यक्तियों (साधक/साधिका) के मस्तिष्क के अन्तः विचारों का माध्यम ही नहीं बन सकता है बल्कि उनके मध्य का विविध उपचार होने का एक मात्र ऐसा उपकरण हो सकता है जो भुक्तभोगी को नया जीवन देने में हर तरह से सक्षम सिद्ध हो।

हां, इस तथाकथित विज्ञान से परे इस विद्या (टेलीपैथी) का सही मायने में उपयोग करने के लिए एक अदद 'साधक, साध्य और साधना' की आवश्यकता पड़ेगी। 'साधक', 'साध्य' और 'साधना' सम्बन्धी इन तीनों बिन्दुओं का आपसी और व्यावहारिक समन्वय 'ध्यान, त्राटक और टेलीपैथी' के सापेक्ष में कैसा और किस प्रकार का होना चाहिए – यह सब अभी भी 'धार्मिक/आध्यात्मिक' विज्ञजनों के लिए विचारणीय है।

इसका विविध कारणों में एक वर्तमान कारण यह भी हो सकता है कि इन सबसे 'आधे – अधूरे' क्रम में जुड़े कतिपय विज्ञजनों को वर्तमान व्यवस्था का 'प्रमाण पत्र' चाहिए। वह रंचमात्र भी यह सोचने समझने का प्रयास नहीं करते है कि जो इसके सम्बन्ध में 'क, ख और ग आदि' भी नहीं जानता है वह इन सबके लिए प्रामाणिक कैसे हो पायेगा। – यह भी तथाकथित विज्ञजनों के लिए एक चिन्ता का विषय है।

कभी – कभी 'अन्त' ही किसी कारण बिन्दु का आरम्भ बन जाता है। इसलिए इन बिन्दुओं पर मानवहितों के लिए नए सिरे से विचार ही नहीं करना होगा बल्कि इन सब की रचनात्मक उपयोगिता को मानव और मानवता के समक्ष नए सिरे से प्रस्तुत करने का प्रयास करना होगा।

'ध्यान, त्राटक और टेलीपैथी ' – इन त्रयी क्रमों में व्यक्ति (साधक/साधिका) का मस्तिष्क ही किसी न किसी रूप में एक दूसरे के प्रति माध्यम बनता है। इस क्रम में यह भी सच है कि चेतनायुक्त मानव के 'हृदय और मस्तिष्क' के मध्य के विविध आवागमन के सापेक्ष में विश्व में ऐसी कोई वैज्ञानिक प्रयोगशाला नहीं निर्मित हो पायी है जिससे इन सबका तुलनात्मक अध्ययन किया जा सके। – यह सब सभी 'परा/अपरा' शोधकर्ताओं और प्रबुद्धजनों के लिए नए सिरे से विचारणीय है।

इस त्रयीक्रम (ध्यान, त्राटक और टेलीपैथी) का समन्वयात्मक स्वरूप, मानव मस्तिष्क एक साथ क्रमिक क्रम में किस प्रकार प्रस्तुत या विवेचित करने का प्रयास करेगा; इसे निम्न सम्भावित क्रम में प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा सकता है –

1.'षट्/सप्त चक्र' (मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा और सहस्रार आदि) के सापेक्ष में ध्यान मार्ग मानव मस्तिष्क को इतना सामान्य बना देता है जिससे वह सरलता और सुगमता से 'प्रकृति/स्रष्टि' के विविध अवयवों से किसी न किसी माध्यम से सम्पर्क

स्थापित करने में हर तरह से सक्षम हो सके। इसके साथ – साथ उसका 'आज्ञा'चक्र स्वयं में एक ऐसा पटल बन जाता है जिस पर एक विशेष 'समय/अन्तराल' में वह (साधक/साधिका) विविध छाया चित्रों का अवलोकन और मूल्यांकन कर सकता है।

यह सब उस व्यक्ति (साधक/साधिका) पर निर्भर करता है कि उसका 'ध्यान' किस दिशा में क्या खोजने या ढूंढ़ने में लगा हुआ है। यह 'ध्यान' का मार्ग 'आध्यात्मिक ऊर्जा' को संग्रहित और उत्सर्जित करने में विशेष उपयोगी हो सकता है। सामान्यतः कतिपय विशिष्ट जन इस 'ध्यान' मार्ग का उपयोग/प्रयोग 'आनन्द /परमानन्द' की स्थिति को प्राप्त करने का एकमात्र माध्यम मान बैठते है। इसे हम एक निश्चित सीमा/ अन्तराल के बाद 'आध्यात्मिक ऊर्जा' के रूप में ही देखेंगे ।

उपरोक्त क्रम को ध्यान में रखते हुए, यदि इस तरह की अवधारणा ईश्वरीय व्यापक समूह के नियामक (ईश्वर, गॉड और खुदा आदि) की होती तो सम्भवतः यह 'स्रष्टि' अपना पूरा आकार कभी भी पूर्ण नहीं कर पाती । इसलिए 'ध्यान' मार्ग को किसी 'कारण' के अन्त के उपरान्त नए आरम्भ के लिए आवश्यक ही नहीं बल्कि उसे आरम्भ सेतु का उद्गम स्थल माना जा सकता है।

2. 'परा/अपरा' के मध्य की त्रिकुटि (नाक, कान और नेत्र आदि) को स्वस्थ्य और सशक्त बनाने में 'त्राटक' मार्ग की भूमिका अह्म हो सकती है। इसके समुचित अभ्यास के अन्तर्गत व्यक्ति (साधक/साधिका) 'परा/अपरा' के मध्य की 'त्रिकुटी' जो उसके मस्तिष्क में विद्यमान है उसे साधनाक्रम के अनुरूप सशक्त बनाने के साथ – साथ 'आध्यात्मिक ऊर्जा' का एक ऐसा पड़ाव (प्लेटफार्म) बना सकता है जो हर तरह से मानवपयोगी सिद्ध हो।

सामान्यतः इस क्रम (त्राटक) से जुड़े विज्ञजनों की यह सोच है कि – इस क्रिया के अभ्यास से नेत्र सम्बन्धी विकार नष्ट होते है। लेकिन उन कतिपय विज्ञजनों की यह अवधारणा मात्र 'आधी/अधूरी' है। क्योकि जिस तरह 'जल' का प्रवाहिक सम्बन्ध 'नदी/नाले' से समुद्र तक होता है उसी तरह 'त्राटक' का रचनात्मक और सृजनात्मक प्रभाव त्रिकुटी (नाक, कान और नेत्र) पर पड़ता है।

मानव मस्तिष्क में 'त्रिकुटी' एक ऐसा पड़ाव है जो 'विविध भौतिकता' और 'आध्यात्मिकता' को निरंतर जोड़ता / तोड़ता रहता है। कहने का तात्पर्य यह है कि – जब मानव शरीर में भौतिकता का आधिक्य होगा तो इस 'त्रिकुटी' का पड़ाव/आकार संकुचित होगा और जब उसमें 'आध्यात्मिकता' का आधिक्य होगा तो निश्चित रूप से उसका (त्रिकुटी) का आकार/पड़ाव विकसित और विविध क्रम में सवंर्द्धित होगा।

इसलिए हर व्यक्ति (साधक/साधिका) को चाहिए कि वह 'आध्यात्मिक ऊर्जा' का संग्रह और मानवहित में उत्सर्जन 'ध्यान' और 'त्राटक' के अभ्यास क्रम के अन्तर्गत निरंतर करने का प्रयास करे।

3. कोई भी भौतिक या आध्यात्मिक कार्य करने के लिए एक निश्चित और सुरक्षित मार्ग होना चाहिए। 'अज्ञानाश्रय ट्रस्ट ' की वैचारिक और शोधात्मक सोच और उससे सम्बन्धित विकास और संवर्द्धन 'मेटाफिजिकल' क्रम में होता है; इसलिए यहां 'भौतिकता/आध्यात्मिकता' का आवश्यक संतुलन हर तरह से बनाना मानवहित और उसके सामूहिक संरक्षण में अति आवश्यक है।

'भौतिकता' का मार्ग प्रशस्त करने में वैज्ञानिकता के साथ – साथ बहुआयामी दृष्टिकोण तथाकथित मानवहित में निरंतर प्रयत्नशील है। यह बात दूसरी है कि वह सबका सब कितना सफल और सक्षम हो पाता है।

उसी क्रम में 'आध्यात्मिकता' का मार्ग प्रशस्त करने में सर्वोत्तम क्रम 'टेलीपैथी' से जुड़ता है। 'आध्यात्मिक ऊर्जा' को व्यक्ति (साधक/साधिका) के माध्यम से संग्रहित और मानवहित में उत्सर्जित करने में 'टेलीपैथी' का मार्ग हर तरह से सक्षम और समर्थ है। हां, यह बात अवश्य है कि इस मार्ग से जुड़ने के पूर्व व्यक्ति (साधक/साधिका) को 'ध्यान और त्राटक' की बहुआयामी प्रक्रियाओं से जुड़ना और अभ्यस्त होना हर तरह से आवश्यक है।

यह सच है कि – 'टेलीपैथी' का मार्ग अन्य सभी मार्गों से क्लिष्ट और दुरूह है। लेकिन किसी व्यक्ति (साधक/साधिका) के लिए असम्भव भी नहीं है।

इसका (टेलीपैथी) आरम्भ ही पांचों इन्द्रियो (देखना, सुनना, सूंघना, छूना और चखना आदि) के उपरान्त छठी इन्द्री से होता है जो मानव मस्तिष्क में सामान्यतः सुप्तावस्था में होती है। इसे जागृत करने में वही व्यक्ति (साधक/साधिका) सक्षम और समर्थ हो पाता है जो 'ध्यान और त्राटक' सम्बन्धी प्रक्रियाओं के अभ्यास में हर तरह से परिपक्व हो।

'टेलीपैथी' में कम से कम दो व्यक्ति (साधक/साधिका) के मस्तिष्क में छठी इन्द्री का जागृत होना आवश्यक है। सामान्यतः यह दो मस्तिष्क एक लिंग का नहीं होना चाहिए। इसमें, यदि एक मस्तिष्क पुरुष का है तो दूसरा मस्तिष्क स्त्री का होना चाहिए। हां, जब स्त्री और पुरुष या 'साधक/साधिका' का मस्तिष्क 'टेलीपैथी' की आवश्यक प्रक्रियाओं में अभ्यस्त हो जाये तो वह अपने क्रम में किसी भी लिंग के साधक/साधिका से 'टेलीपैथी' के क्रम में आवश्यक समन्वय मस्तिष्कीय आधार पर निर्मित कर सकता है।

यह सच है कि 'टेलीपैथी' सम्बन्धी क्रियाओं से दूर बैठे व्यक्ति की विविध समस्याओं का आवश्यक उपचार हो सकता है। यही नहीं, इसके (टेलीपैथी) द्वारा चिकित्सा सम्बन्धी कार्य भी सम्पन्न किया जा सकता है। चिकित्सा के क्षेत्र में यह विद्या 'टेलीपैथी' अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

'टेलीपैथी'– एक ऐसी जीवंत प्रक्रिया/विधा है जिसके माध्यम से व्यक्ति (साधक/साधिका) भौतिक कार्यों को करते हुए 'आध्यात्मिकता' के अन्तर्गत ईश्वरीय तत्वों के

व्यापक समूह या तथाकथित घोषित/अघोषित 'देवी/देवता' से 'अन्तःबाह्य' दृष्टि से सम्पर्क स्थापित कर सकता है।

वैदिक काल से लेकर वर्तमान के मध्य जो भी कतिपय सिद्ध/ समर्थ 'साधक/साधिका' हुए है वह सब 'आध्यात्मिकता' की एक सम्भावित ऊंचाई तक पहुंचते – पहुंचते 'आत्मा और परमात्मा' के मध्य 'टेलीपैथी' का ही मार्ग प्रशस्त और निर्मित किया है। कोई भी व्यक्ति (साधक/साधिका) सही मायने में 'आध्यात्मिक यात्रा' का क्रम 'टेलीपैथी' के बिना नहीं कर सकता है। इसी क्रम में यह बात भी सही है कि – जिस तरह कोई भी व्यक्ति ऊंचे /लम्बे वृक्ष पर चढ़ते समय उसके पत्ते और टहनियों को नहीं गिनता है उसी तरह 'आध्यात्मिकता' से सही मायने में जुड़ा हुआ व्यक्ति (साधक/साधिका) अपनी 'आध्यात्मिक यात्रा' में उससे जुड़े मार्ग को उतना महत्व नहीं देता है जितना वह अपने 'अभिष्ट या साध्य/लक्ष्य' को देता है। वस्तुतः मार्ग – चाहे भौतिक हो या आध्यात्मिक, उन दोनों का कार्य है कि उससे सम्बन्धित व्यक्ति (रहबर) को 'गन्तव्य' स्थल तक पहुंचाना ।

उपरोक्त प्रामाणिक / सम्भावित और वैचारिक वक्तव्यों और शोधपरक् विचारों से यह सावीीौमिक क्रम में स्पष्ट हो जाता है कि – 'मेटाफिजिकल' क्रम में 'भौतिकता और आध्यात्मिकता' – दोनों का समन्वय किसी न किसी रूप में अवश्य होता है। अब यह बात दूसरी है कि – किसी व्यक्ति (साधक/साधिका) के 'अन्तः बाह्य' में 'भौतिकता और आध्यात्मिकता' का अनुपात कितना और किस रूप में है। इसे निम्न सम्भावित क्रम में व्यक्त किया जा सकता है –

' जब भौतिकता किसी व्यक्ति (साधक/साधिका) के 'अन्तःबाह्य' में सूक्ष्मतम् मात्रा में जीविकोपार्जन के लिए निश्चित और निहित होती है तो स्वाभाविक क्रम में उसके 'अन्तःबाह्य' में 'आध्यात्मिकता' का आधिक्य समावेशित होने लगता है।

उसके विपरीत क्रम में जब भौतिकता किसी व्यक्ति (साधक/साधिका) के 'अन्तःबाह्य' में सुख / ऐश्वर्य का ऐसा साधन बन जाता है कि वह जीविकोपार्जन के स्थान पर अपना जीवन भोग/विलास के लिए जीने लगता है तो वहां स्वाभाविक क्रम में उसके 'अन्तःबाह्य' में 'भौतिकता' का आधिक्य होने लगता है। इस क्रम में उसके 'अन्तःबाह्य' की 'आध्यात्मिकता' न्यूनता (अल्पता) का आकार ग्रहण करने लगती है।'

उपरोक्त क्रम के अन्तर्गत उसी व्यक्ति (साधक/साधिका) को 'ध्यान, त्राटक और टेलीपैथी' आदि की व्यापक प्रक्रियाओं या विधा से जुड़ने का प्रयास करना चाहिए जो 'मेटाफिजिकल' क्रम में भौतिकता की 'अल्पता' और 'आध्यात्मिकता' की 'विराटता/आधिक्य' से निरंतर जुड़ने और उसमें जीवन जीने के लिए हर तरह से अभ्यस्त हो।

अब प्रश्न यह उठता है कि – व्यक्ति (साधक/साधिका) को 'ध्यान, त्राटक और टेलीपैथी' से सही मायने में जुड़ने के लिए किस तरह का प्रयास या अभ्यास करना चाहिए।

उसका सम्भावित अन्तराल कितना और किस प्रकार का हो सकता है । सामान्यतः आध्यात्मिक प्रक्रिया में इन सम्भावित जिज्ञाशाओं को निम्नक्रम में प्रस्तुत किया जा सकता है –

1. व्यक्ति (साधक/साधिका) को चाहिए कि वह दैनिक क्रम में प्रातः और मध्य रात्रि में 'ध्यान' का विधिवत् अभ्यास करे। दैनिक अभ्यास के क्रम में उसे कम से कम '30 – 45' मिनट तक 'ध्यान' का अभ्यास करना चाहिए। वह जब '2/3' माह तक 'ध्यान' का अभ्यास कर ले और उसके अन्तर्गत अन्तः दृष्टि से 'सूक्ष्मता/विराटता' का अनुभव करने लगे तब वह 'त्राटक' के ध्यान/अभ्यास के विषय में विचार कर सकता है।

2. व्यक्ति (साधक/साधिका) को चाहिए कि – वह 'ध्यान' का विधिवत अभ्यास के उपरान्त दैनिक क्रम में प्रातः और मध्य रात्रि में 'त्राटक' का अभ्यास आरम्भ कर दे। 'त्राटक' का अभ्यास उसे 'ध्यान' के अभ्यास के उपरान्त करना चाहिए।

दैनिक अभ्यास के क्रम में वह (साधक/साधिका) '15–30' मिनट 'ध्यान' और '15–30' मिनट 'त्राटक' का अभ्यास नियमित रूप से करे। इन दो अभ्यास (ध्यान और त्राटक) के क्रम में '2/3' माह के उपरान्त जब वह 'सूक्ष्मता और विराटता' के साथ – साथ 'पारेन्द्रिय विद्या' का अनुभव करने लगे तब वह 'टेलीपैथी' के अभ्यास क्रम से जुड़ने का प्रयास कर सकता है।

3. व्यक्ति (साधक/साधिका) को चाहिए कि – वह 'ध्यान' और 'त्राटक' का विधिवत अभ्यास के उपरान्त दैनिक क्रम में प्रातः और मध्य रात्रि में 'टेलीपैथी' का अभ्यास आरम्भ कर दे। ' टेलीपैथी ' का अभ्यास उसे (साधक/साधिका) 'ध्यान' और 'त्राटक' के अभ्यास के उपरान्त करना चाहिए।

दैनिक अभ्यास के क्रम में वह (साधक/साधिका) '10–15' मिनट 'ध्यान' और '15–20' मिनट 'त्राटक' और '20–30' 'टेलीपैथी' का अभ्यास नियमित रूप से करे। इन तीनों (ध्यान, त्राटक और टेलीपैथी) का अभ्यास उसे लगभग '2/3' माह तक करना चाहिए। उसके उपरान्त वह (साधक/साधिका) किसी भी 'घोर/अघोर' साधना के अन्तर्गत अपनी 'आध्यात्मिक' यात्रा 'टेलीपैथी' के क्रम में करके 'अध्यात्म' की सम्भावित ऊंचाई तक पहुंच सकता है।

(विशेष – इन तीनों 'ध्यान, त्राटक और टेलीपैथी' विधाओं/प्रक्रियाओं का अभ्यास 'घोर/अघोर' क्रम में यदि पति/पत्नी सामूहिक क्रम में 'साधक/साधिका' के रूप में करें तो उनकी आध्यात्मिक यात्रा सरल और सुगम हो सकती है।)

'ध्यान, त्राटक और टेलीपैथी' आदि विधाओं/ प्रक्रियाओं के क्रमिक अभ्यास के अन्तर्गत वह 'प्रणव' (ऊँ) का समुचित सहयोग ले सकता है। इन तीनों 'ध्यान, त्राटक और टेलीपैथी' के क्रमिक अभ्यास में 'प्रणव' (ऊँ) की उपयोगिता निम्न कारणों से अति आवश्यक है –

''आदि काल में जब प्रकृति साम्यावस्था में थी, तब अवश्य किसी प्रकार का 'शब्द' अस्तित्व में नहीं था क्योंकि उस समय भौतिक संसार की कोई गति नहीं थी। क्रमिक क्रम में पहली ध्वनि तब हुई, जब वैषम्यावस्था होने के कारण सारी प्रकृति में एक प्रकार का सामान्य स्पन्दन व्याप्त हो गया। सम्भवतः यही थी 'ऊँ ' शब्द की प्रणव – ध्वनि'।

'ऊँ ' केवल उस सूक्ष्म 'शब्द' के स्थूल उच्चारण को व्यक्ति के कानों तक लगभग व्यक्त करता है। यही 'सूक्ष्म' शब्द योगानुभव में प्रथम गति के रूप में अनुभूत होता है क्योंकि प्रतिक्षण सृष्ट्यात्मक गति वर्तमान रहती है। इस सामान्य 'स्पन्द' और 'शब्द' से विशेष 'स्पन्द' और 'शब्द' उत्पन्न होते हैं। प्रकृति के गुणों की गति से पहले साम्यवस्था में एक सामान्य सी हलचल उत्पन्न होती है, उसके बाद गुणों की एक दूसरे पर क्रिया और प्रतिक्रिया होती है।

विविध गत्यात्मक दशाओं के प्रस्तुत होने पर विभिन्न 'शब्द' उत्पन्न होते हैं। प्रथम और समस्त में समभाव से व्यापक शब्द 'ऊँ ' है जो महाबीज है क्योकि यह अन्य सबका और सभी संयुक्त शब्दों का मूल है। 'ऊँ ' सामान्य 'शब्द' है और बीजमन्त्र विशेष 'शब्द' हैं जो वर्णमाला के अक्षर कहलाते हैं। यही अक्षर सामान्य 'शब्द' से विकास पाते हैं। इन विशिष्ट शब्दों में उक्त सामान्य शब्द अन्तर्निहित रहता है। इस प्रकार मुख से उच्चारित 'ऊँ ' कार या 'प्रणव' और 'बीजमन्त्र' अनुच्चरित आदि ध्वनि के उच्चरित प्रतिनिधि हैं। यह अपनी अन्तिम अवस्था में इस उच्चरित रूप को प्राप्त करते हैं। '

'प्रणव' (ऊँ) के समुचित सहयोग और 'साध्यता' क्रम से इन तीनों 'ध्यान, त्राटक और टेलीपैथी' का क्रमिक अभ्यास जब परिपक्व (लगभग तीन माह का अन्तराल) होने लगता है तो व्यक्ति (साधक / साधिका) को क्रमिक क्रम में 'विविध छाया चित्र, विविध आनन्ददायक आकृतियां और देवांश के आवश्यक संकेत' आदि 'आज्ञाचक्र' पर दृष्टिगत् होने लगते हैं। कभी – कभी तो 'सूक्ष्मता' और 'विराटता' के मध्य वह (साधक / साधिका) अपने 'अन्तः बाह्य' (अनाहत और सहस्रार के मध्य) में एक ऐसा 'आकार' ग्रहण करने लगता है जो उसके अन्तः बाह्य के लिए आनन्ददायक तो होता ही है और उसके साथ – साथ उसे (साधक / साधिका) 'भूत, भविष्य और वर्तमान' का वह संकेत देता है जिसका मूल्यांकन वह तत्काल कर भी सकता है और नहीं भी ।

व्यक्ति (साधक / साधिका) – अपने त्रयी 'ध्यान, त्राटक और टेलीपैथी' अभ्यास के क्रम में अनन्तगामी और असीमित स्रष्टि को आच्छादित करने वाले 'अध्यात्म' में 'प्रणव' (ऊँ) से जितना भी आत्म साक्षात्कार करने में सक्षम होता है उतना ही उसके अन्तःबाह्य की आध्यात्मिकता का एक रचनात्मक 'पड़ाव' निश्चित और निर्मित होता है।

'अज्ञानाश्रय ट्रस्ट ' के संरक्षण में 'अज्ञानाश्रय' (शक्ति संग्रहालय) पूर्णतः पारेन्द्रिय विद्या (टेलीपैथी) से आध्यात्मिक शोधात्मक क्रम और विविध साधनाक्रमों से सम्बद्ध है,

इसलिए कोई भी जिज्ञाशु व्यक्ति (साधक/साधिका) इसके अन्तर्गत विविध क्रमों से जुड़ने का प्रयास कर सकता है।

'मेटाफिजिकल' क्रम के अन्तर्गत, आगामिक शोधपरक् विवरण में 'ध्यान, त्राटक और पारेन्द्रिय विद्या' के विविध आयामों के साथ 'साध्य और साधना' के विविध उपक्रम और विविध साधनाओं पर आवश्यक संकेत 'अज्ञानाश्रय ट्रस्ट' द्वारा प्रस्तुत किया जायेगा।

प्रस्तुतकर्ता –'अज्ञानाश्रय ट्रस्ट'